तपेदिक नियंत्रण : एक पड़ताल

डॉ. नरेश पुरोहित

तपेदिक (टी.बी.) की बीमारी के इलाज के लिए पहली दवा स्ट्रेप्टोमायसिन के ईजाद होने के पचास वर्ष बाद भी, आज दुनिया में 2.2 करोड़ लोग इस बीमारी से ग्रस्त हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार वर्ष 1995 में दुनिया भर में 30 लाख लोगों की मौत इस रोग से हुई थी। भारत में जहां राष्ट्रीय तपेदिक नियंत्रण कार्यक्रम की शुरुआत 1962 में हो गई थी, वहां 1.4 करोड़ लोग तपेदिक की बीमारी से पीड़ित हैं एवं हर साल इस बीमारी के कारण 5 लाख लोगों की मृत्यु होती है।

केन्द्रीय स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय (1999) के अनुसार तपेदिक से पीड़ित कुल लोगों में से 25% लोग अत्यधिक संक्रामक हैं। और प्रत्येक वर्ष वर्तमान तपेदिक रोगियों की संख्या में 20 से 25 लाख नए रोगी जुड़ जाते हैं। राष्ट्रीय तपेदिक नियंत्रण कार्यक्रम की समग्र समीक्षा के लिए बनी टीम की 1992 में प्रकाशित रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया था कि भारत में 1990 से 2000 के बीच लगभग 35 लाख लोगों की मौत तपेदिक से होगी। तपेदिक से मरने वाले 75% लोग उत्पादक उम्र के, यानी 15 से 44 वर्ष के होते हैं।

हमारे देश में इस बीमारी के तेज़ी से फैलने में, भीड़ भरे रहवासों का बड़ा योगदान है। अनुमान है कि भारत में बिना इलाज वाला तपेदिक का प्रत्येक रोगी कम से कम 10 से 15 लोगों को संक्रमित करता है।

रोग के प्रति लम्बे समय से चली आ रही लापरवाही और सरकार की तरफ से पर्याप्त वित्तीय प्रावधान न होने से तपेदिक के विरुद्ध अभियान में रुकावट आई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार प्राथमिक रूप से अप्रभावी उपचार के कारण होने वाली बहु दवा प्रतिरोधी तपेदिक (मल्टी ड्रग रेज़िस्टेंट टी.बी.) के परिणामस्वरूप रोगी तो कमज़ोर हो जाता है जबकि बैक्टीरिया ताकतवर।

जहां तक बी.सी.जी. का सवाल है तो यह टीका 15 वर्ष तक के बच्चों के लिए असरदार होता है। परन्तु वयस्कों के मामले में यह प्रभावी नहीं होता है। फिर भी यह बच्चों में रोग के प्रकोप से बचाव के लिए एक असरदार हथियार बना हुआ है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की 1996 की स्वास्थ्य रिपोर्ट में कहा गया है कि 1995 में तपेदिक ने 30 लाख लोगों की जान ली। यह 1900 के शुरुआती दौर, जबकि तपेदिक की दवा नहीं खोजी गई थी, से भी ज़्यादा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन का अनुमान है कि यदि इस रोग को नियंत्रित करने के लिए तत्काल कदम नहीं उठाए गए तो इस रोग के चलते अगले 10 साल में 3 करोड़ लोग जान गंवा सकते हैं।

टी.बी. के प्रति लम्बे समय से चली आ रही लापरवाही और सरकार की तरफ से पर्याप्त वित्तीय प्रावधान न होने से इसके विरुद्ध अभियान में रुकावट आई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार प्राथमिक रूप से अप्रभावी उपचार के कारण होनेवाली बहु दवा प्रतिरोधी तपेदिक के परिणामस्वरूप रोगी तो कमज़ोर हो जाता है जबकि बैक्टीरिया ताकतवर।

तपेदिक की अति संक्रमणकारी बीमारी तब फैलती है जबकि कैरियर (धारक) कफ एवं *ट्यूबरकुलोसिस बेसिलस* वातावरण में प्रवेश करते हैं। तपेदिक का बैक्टीरिया किसी दूसरे व्यक्ति को ग्रसित करने तक हवा में निष्क्रिय अवस्था में रहता है। हालांकि अनुमानित रूप से भारत की लगभग आधी आबादी टी.बी. से संक्रमित है, परन्तु वास्तव में थोड़े ही लोग इस बीमारी से पीड़ित हैं। तपेदिक का सबसे सामान्य प्रकार पलमोनरी टी.बी. फेफड़े का तपेदिक है, हालांकि यह बीमारी शरीर के दूसरे अंगों पर भी आक्रमण कर सकती है।

85 से 90% प्रकरणों में स्पुटम (थूक) परीक्षण, लाभ लागत की दृष्टि से टी.बी. के निदान का सबसे उत्तम तरीका माना जाता है। एक्स-रे भी टी.बी. के निदान में मदद करता है, हालांकि यह एक महंगा विकल्प है। हो

तपेदिक (टी.बी.) नियंत्रण कानून की मौजूदा स्थिति

वर्तमान में

- देश के 496 ज़िलों में से 447 में ज़िला टी.बी. केन्द्र हैं।
- 330 टी.बी. चिकित्सा केन्द्र हैं।
- टी.बी. मरीज़ों के लिए अस्पतालों में अलग से 476000 बिस्तर हैं।
- 16 टी.बी. प्रशिक्षण व प्रदर्शन केन्द्र हैं।

– टी.बी. के कारण होने वाली मृत्यु दर 1970 के दशक के 80 प्रति एक लाख आबादी से घटकर 1993 में 53 प्रति एक लाख आबादी हो गई है।

– टी.बी. के लिए बजट का प्रावधान 1981 के 1 करोड़ 80 लाख रु. से बढ़ाकर 1996-97 में विश्व बैंक की परियोजना तैयारी सुविधा ऋण के अंतर्गत 52 करोड़ 7 लाख रु. किया गया है।

टी.बी. के लिए बजट प्रावधान

वर्ष	बजट आवंटन (करोड़ रु. में)	खर्च (करोड़ रु. में)
1992-93	20	19.94
1993-94	25	19.70
1994-95	40	37.24
1995-96	72*	57.51
1996-97	75	-

*अंत में 58.82 करोड़ रु. आवंटित

(स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के 1996-97 की वार्षिक रिपोर्ट से साभार)

सकता है कि प्रकरणों में स्पुटम परीक्षण से बीमारी की उपस्थिति का पता न लग सके। ऐसे में टी.बी. बैसिलस की उपस्थिति का पता लगाने में कल्चर टेस्ट मददगार हो सकता है। परन्तु, इस प्रक्रिया में लगभग दो महीने लग जाते हैं। इसके अलावा यह खर्चीली भी है और आसानी से उपलब्ध भी नहीं होती है।

अधिकतर लोगों को उनका शक्तिशाली प्रतिरक्षा तंत्र टी.बी. के ताकतवर हमले से बचाता है। परन्तु भारत की जनसंख्या के एक बड़े भाग का प्रतिरक्षा तंत्र, उचित पोषण के अभाव में कमज़ोर हो गया है। इसके अलावा निम्नस्तरीय रहवास सुविधाओं, विशेषकर मकानों में ज़्यादा लोगों के रहने एवं हवा की आवाजाही की व्यवस्था के अभाव ने इस रोग के तेज़ी से फैलाव में योगदान दिया है। अभ्रक की खानों में काम करने वाले मज़दूर भी रोग के प्रति संवदेनशील रहते हैं, क्योंकि महीन धूल स्थानीय तौर पर फेंफड़ों की प्रतिरक्षा व्यवस्था को कमज़ोर बना देती है।

केन्द्र द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम के तौर पर राष्ट्रीय तपेदिक नियंत्रण कार्यक्रम एन. टी. सी. पी. को 1962 में प्रारम्भ किया गया था, जिसमें केन्द्र सरकार, राज्यों को मुख्यतः दवाओं, एक्स-रे फिल्म व अन्य उपकरणों के रूप में 50% धन का योगदान देती है। अवधारणात्मक रूप से कार्यक्रम को ज़िला तपेदिक केन्द्र के पर्यवेक्षण में ज़िलों में लागू किया जाना था। इसमें पेरिफेरल स्वास्थ्य संस्थान (पी.एच.आई.) जो कि सामान्यतः प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र होते हैं, को ज़िला तपेदिक केन्द्र के साथ समन्वय करना था। हालांकि एन. टी. सी. पी. को टी.बी. के रोगियों की पहचान करने एवं उनका इलाज करने के उद्देश्य से शुरू किया गया था, परन्तु इसके लिए पर्याप्त धन आवंटित नहीं किया गया। वर्ष 1992-93 से 1995-96 के बीच एन. टी. सी. पी. के लिए केन्द्र का आवंटन 27 करोड़ रुपए से बढ़कर 40 करोड़ रुपए हुआ। वास्तविक अर्थों में इस राशि में तीन प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से वृद्धि हुई है।

हालांकि प्रत्येक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में स्पुटम परीक्षण करने के लिए सूक्ष्मदर्शी का होना अपेक्षित रहता है, परन्तु कई प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में ये (इनकी कीमत लगभग 8000 से 10000 रुपए होती है) उपलब्ध नहीं हैं। बार-बार बिजली गुल होना व प्रशिक्षित प्रयोगशाला तकनीशियनों का अभाव जैसी समस्याओं के कारण भी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों का कामकाज प्रभावित होता है। यात्रा की लागत, प्रेरणा का अभाव, बीमारी के बारे में जागृति की कमी एवं पर्याप्त प्रचार के अभाव के नतीजतन प्रायः रोगी बीच में ही इलाज करवाना बंद कर देते हैं। टी.बी. का इलाज करने वाले देश भर के डाक्टरों का कहना है कि शुरुआती इलाज के बाद लोग अच्छा महसूस करने लगते हैं और जैसे ही उन्हें सुधार दिखने लगता है, वे इलाज लेने के कम ही इच्छुक

रहते हैं। तब उन्हें निरन्तर इलाज का महत्व बताने वाला कोई नहीं होता है। जब इलाज को बीच में ही छोड़ दिया जाता है तो मरीज में दवा के प्रति प्रतिरोध विकसित होने का खतरा बहुत ज़्यादा होता है।

राष्ट्रीय तपेदिक संस्थान बैंगलोर के अनुसार वर्ष 1991 में भारत में इलाज पूर्ण होने की दर मात्र 41% थी। यह दर महाराष्ट्र में सबसे अधिक 73% थी। चेन्नई स्थित इंस्टीट्यूट ऑफ थोरैसिक मेडिसिन द्वारा वर्ष 1993-94 में 2.2 लाख लोगों का परीक्षण किया गया, जिससे पता चला कि टी.बी. से पीड़ित पाए गए लोगों में से लगभग 10% लोग दवा प्रतिरोधी थे। 11% रोगी ईथेमब्यूटोल के प्रति प्रतिरोधी थे, 13% रिफैमपिसिन प्रतिरोधी थे, 26% स्ट्रेप्टोमायसिन प्रतिरोधी थे और 24% रोगी आइसोनायेजिड प्रतिरोधी थे। बाकी के रोगियों में इन दवाओं के संयोजन के प्रति प्रतिरोध विकसित हो गया था। बहु दवा प्रतिरोधी (मल्टी ड्रग रेजिस्टेंट टी.बी.) जो हाल के वर्षों में एक गम्भीर समस्या बन गई है, के लिए अनियंत्रित निजी मेडिकल प्रैक्टिसकर्ता मुख्य रूप से ज़िम्मेदार हैं। शुरुआती चरणों में टी.बी. के 60% रोगियों का इलाज निजी प्रैक्टिसकर्ता करते हैं। प्रायः ये रोगियों के लक्षण के आधार पर सर्दी-खांसी का इलाज करते हैं। निजी प्रैक्टिसकर्ताओं को यह समझना चाहिए कि रोग के बचाव व पुनर्वास के पक्ष महत्वपूर्ण हैं। उपचार के प्रति रोग का प्रतिरोध, दवाओं के विवेकहीन उपयोग का परिणाम है।

भारत में तपेदिक का प्रसार
प्रति 100,000 लोग

राज्य	लोग (प्रति लाख)
मणिपुर	941
अरूणाचल प्रदेश	938
राजस्थान	724
तमिलनाडु	703
असम	638
बिहार	595
केरल	586
उत्तर प्रदेश	560
उड़ीसा	555
नागालैंड	491
मध्यप्रदेश	435
आंध्रप्रदेश	407
पश्चिम बंगाल	357
हरियाणा	327
मेघालय	321
मिजोरम	311
गुजरात	308
महाराष्ट्र	293
त्रिपुरा	289
जम्मू व कश्मीर	245
हिमाचल प्रदेश	242
पंजाब	238
गोवा	179
कर्नाटक	136
सम्पूर्ण भारत	467

स्रोतः राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण 1992-93

विश्व स्वास्थ्य संगठन की विश्व स्वास्थ्य रिपोर्ट में ज़िक्र किया गया है कि दवा प्रतिरोध, निम्नस्तरीय चिकित्सीय सलाह या रोगी द्वारा उपचार ठीक ढंग से न लेने का परिणाम है। रिपोर्ट में चेताया गया है कि यह समस्या तब सबसे खतरनाक रूप धारण कर लेती है जब रोग पूर्णतः लाइलाज हो जाता है और डॉक्टर अपने आपको एण्टीबायटिक दवाओं के पूर्व के युग जैसी स्थिति का सामना करते हुए पाते हैं।

हालांकि टी.बी. के उपचार के लिए शॉर्ट कोर्स कीमोथेरेपी (एस. सी. सी.) पद्धति को पायलट स्तर पर 1982-83 में देश के 18 ज़िलों में प्रारम्भ किया गया था और अब यह देश के 292 ज़िलों में चल रहा है। परन्तु ज्ञात हुआ है कि इन क्षेत्रों में इलाज पूर्ण होने की दर 40% से बढ़कर सिर्फ 50% ही हुई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, इलाज पूर्ण होने की दर में हुई इस वृद्धि के लिए एस. सी. सी. के अंतर्गत आने वाली दवाओं की कीमत में हुई भारी वृद्धि अनुकूल नहीं है।

उचित प्रबन्धकीय कार्य व्यवहार न होने के कारण भारत टी.बी. से प्रभावी ढंग से निपटने में सक्षम नहीं है, न कि चिकित्सीय विशेषज्ञता के अभाव के कारण। संशोधित एन. टी. सी. पी. कार्यक्रम को पांच राज्यों एवं 10 शहरों तक बढ़ाया गया है, जहां करीब 18.7 करोड़ जनसंख्या रहती है। संशोधित कार्यक्रम में रोग प्रकरणों की पहचान की पूर्व की प्राथमिकता की जगह प्रकरणों को पकड़कर रखने पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया है। कार्यक्रम सफलता दर को वर्तमान के 30% से बढ़ाकर 85% करने के लिए प्रयासरत है। ***(स्रोत फीचर्स)***